International Journal for Research Trends in Social Science & Humanities
Volume 4, Issue 2
Mar-Apr 2026, PP 1-9

भूमण्डलीकरण के युग में जलवायु परिवर्तन से निपटने में भारतीय ज्ञान प्रणाली और राष्ट्रीय नीति का समन्वयात्मक अध्ययन

विवेक कुमार
रिसर्च स्कॉलर
मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर (राजनीति विज्ञान विभाग)
ईमेल: **vivakrajilu@gmail.com**

सारांश

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन वैश्विक स्तर पर मानव समाज और प्राकृतिक पारिस्थितिकी के लिए एक गंभीर चुनौती के रूप में सामने खड़ी है। औद्योगिकीकरण, तीव्र शहरीकरण तथा संसाधनों के अनियंत्रित दोहन के कारण पर्यावरणीय संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। ऐसे समय में यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या केवल आधुनिक तकनीकी समाधान जलवायु संकट का सामना करने के लिए पर्याप्त हैं। भारत के संदर्भ में यह विमर्श और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यहाँ प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की समृद्ध परंपरा रही है, जिसे 'भारतीय ज्ञान प्रणाली' के रूप में जाना जाता है।

यह शोध-पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा के पर्यावरणीय दृष्टिकोण तथा भारत सरकार की जलवायु नीतियों का तुलनात्मक और समन्वयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यदि पारंपरिक ज्ञान, स्थानीय समुदायों के अनुभव तथा आधुनिक वैज्ञानिक नीतियों के बीच समन्वय स्थापित किया जाए, तो जलवायु परिवर्तन से निपटने की रणनीतियाँ अधिक प्रभावी और टिकाऊ हो सकती हैं।

मुख्य शब्द: जलवायु परिवर्तन, भारतीय ज्ञान प्रणाली, राष्ट्रीय नीति, भूमण्डलीकरण, सतत विकास।

1. प्रस्तावना

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जलवायु परिवर्तन एक ऐसी जटिल चुनौती के रूप में उभरकर हमारे सामने आया है, जिसने पर्यावरण, अर्थव्यवस्था और समाज तीनों को गहराई से प्रभावित किया है। औद्योगिकीकरण, तीव्र शहरीकरण, जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक उपयोग तथा प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन ने पृथ्वी के पारिस्थितिक संतुलन को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप तापमान वृद्धि, समुद्र-स्तर में बढ़ोतरी, चरम मौसमी घटनाओं की आवृत्ति तथा जैव विविधता के क्षरण जैसी समस्याएं निरंतर दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। संयुक्त राष्ट्र एवं अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा किए गए अध्ययन भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि यदि समय रहते इस पर प्रभावी

कदम नहीं उठाए गए, तो भविष्य में यह संकट मानव जीवन और विकास की संभावनाओं के लिए गंभीर खतरा बन सकता है।[1]

भूमण्डलीकरण ने आर्थिक और तकनीकी विकास के नए अवसर तो प्रदान किए हैं, परन्तु साथ ही पर्यावरणीय दबाव को भी बढ़ा दिया है। वैश्विक उत्पादन और उपभोग की बढ़ती प्रवृत्ति ने प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव डाला है, जिसके परिणामस्वरूप जलवायु परिवर्तन की समस्या और अधिक जटिल हो गई है। इस संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए वैकल्पिक दृष्टिकोणों की खोज की जाए।[2]

भारतीय ज्ञान प्रणाली इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करती है। प्राचीन भारतीय चिंतन में प्रकृति को केवल संसाधन के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के अभिन्न अंग के रूप में देखा गया है। वैदिक साहित्य में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को "पञ्चमहाभूत" के रूप में स्वीकार किया गया है, जो समस्त सृष्टि के आधार माने गए हैं। इसी प्रकार "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धांत यह प्रतिपादित करता है कि संपूर्ण पृथ्वी एक परिवार के समान है, जहाँ मानव और प्रकृति के बीच सह-अस्तित्व का संबंध होना चाहिए।[3]

समकालीन भारत में जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए विभिन्न नीतिगत पहलें की गई हैं। राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना (**NAPCC**), अक्षय ऊर्जा मिशन, जैव विविधता संरक्षण कार्यक्रम तथा सतत विकास लक्ष्यों के अनुरूप नीतियां इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। इसके अतिरिक्त "मिशन लाइफ" (**LiFE**) जैसे प्रयास पर्यावरण-अनुकूल जीवन शैली को बढ़ावा देने का प्रयास करते हैं, जो भारतीय परंपरा में निहित सतत जीवन दृष्टिकोण से प्रेरित हैं।[4]

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि जलवायु परिवर्तन की चुनौती से प्रभावी रूप से निपटने के लिए केवल तकनीकी उपाय पर्याप्त नहीं हैं। इसके लिए सांस्कृतिक मूल्यों, पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक नीतिगत उपायों के बीच एक समन्वित दृष्टिकोण आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन इसी संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली और राष्ट्रीय जलवायु नीतियों के बीच अंतर्संबंधों का विश्लेषण करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि इन दोनों के समन्वय से सतत और पर्यावरण-संतुलित विकास की दिशा में किस प्रकार प्रभावी कदम उठाए जा सकते हैं।

2. भूमण्डलीकरण और जलवायु परिवर्तन: एक वैचारिक परिप्रेक्ष्य

भूमण्डलीकरण आधुनिक विश्व व्यवस्था की एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसने आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। जिससे वैश्विक स्तर पर व्यापार, निवेश, उत्पादन तथा उपभोग के स्वरूप में तीव्र विस्तार हुआ है। यद्यपि इस प्रक्रिया ने विकास और समृद्धि के नए अवसर प्रदान किए हैं, किंतु इसके साथ-साथ पर्यावरणीय संकटों की तीव्रता को भी बढ़ा दिया है। वहीं औद्योगिक उत्पादन, ऊर्जा की बढ़ती मांग और प्राकृतिक

संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने पृथ्वी के पारिस्थितिक संतुलन को भी गंभीर रूप से प्रभावित किया है।[5]

जलवायु परिवर्तन इसी पर्यावरणीय असंतुलन का प्रमुख परिणाम है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि औद्योगिक क्रांति के बाद से वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों–विशेषतः कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा में निरंतर वृद्धि हुई है। इन गैसों के कारण पृथ्वी का औसत तापमान निरंतर बढ़ रहा है, इसके परिणामस्वरूप समुद्र-स्तर में वृद्धि, हिमनदों का पिघलना, अनियमित वर्षा, सूखा और बाढ़ जैसी चरम मौसमी घटनाएँ अधिक तीव्र हो गई हैं।[6]

भूमण्डलीकरण के संदर्भ में जलवायु परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन कैसे बनाए रखें। विकासशील देशों के लिए आर्थिक विकास और गरीबी उन्मूलन प्राथमिक लक्ष्य हैं, जबकि विकसित देशों द्वारा ऐतिहासिक रूप से अधिक कार्बन उत्सर्जन किया गया है। इस कारण 'जलवायु न्याय' **(Climate Justice)** का प्रश्न वैश्विक विमर्श का महत्वपूर्ण विषय बन गया है।[7] अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए विभिन्न संस्थागत प्रयास किए गए हैं। संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में 'संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन रूपरेखा अभिसमय' **(UNFCCC)**, क्योटो प्रोटोकॉल तथा पेरिस समझौते आदि जैसे कई समझौते वैश्विक स्तर पर कार्बन उत्सर्जन को नियंत्रित करने और सतत विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से किए गए हैं। इन समझौतों का मुख्य लक्ष्य यह है कि वैश्विक तापमान वृद्धि को नियंत्रित करते हुए पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखा जाए।[8]

भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह चुनौती और भी जटिल हो जाती है, क्योंकि यहाँ आर्थिक विकास की आवश्यकता के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारी भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। इसलिए भारत ने अंतरराष्ट्रीय मंचों पर "सामान्य किंतु विभेदित उत्तरदायित्व" (**CBDR)** के सिद्धांत का समर्थन किया है, जो यह स्वीकार करता है कि सभी देशों की जलवायु संकट में जिम्मेदारी समान नहीं है।[9]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भूमण्डलीकरण और जलवायु परिवर्तन के बीच गहरा अंतर्संबंध है। आर्थिक विकास के वर्तमान मॉडल ने पर्यावरणीय दबाव को बढ़ा दिया है, जिसके कारण पारंपरिक ज्ञान, सांस्कृतिक मूल्यों और सतत जीवन-शैली की प्रासंगिकता पुनः उभरकर सामने आई है। इसी संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जो मानव और प्रकृति के बीच संतुलित संबंध पर बल देती है।

3. भारतीय ज्ञान प्रणाली में प्रकृति और पर्यावरण की अवधारणा

भारतीय ज्ञान प्रणाली में प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के अभिन्न अंग एवं आध्यात्मिक चेतना के आधार के रूप में देखा गया है। प्राचीन भारतीय चिंतन में मानव और प्रकृति के बीच गहरे पारस्परिक संबंध स्वीकार किया गया है। वस्तुतः वैदिक साहित्य, उपनिषद,

पुराण और विभिन्न दार्शनिक परंपराएँ इस बात पर बल देती हैं कि प्राकृतिक तत्वों के साथ संतुलित संबंध बनाए रखना मानव जीवन की स्थिरता तथा समृद्धि के लिए आवश्यक है।[10]
ऋग्वेद और अथर्ववेद जैसे प्राचीन ग्रंथों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश को जीवन के आधारभूत तत्वों के रूप में स्वीकार किया गया है, जिन्हें सामूहिक रूप से "पञ्चमहाभूत" कहा जाता है। इन तत्वों के बीच संतुलन को बनाए रखना ही पर्यावरणीय स्थिरता का आधार माना गया है। अथर्ववेद में पृथ्वी को माता के रूप में संबोधित करते हुए कहा गया है–

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।"
अर्थात् पृथ्वी हमारी माता है और हम उनके पुत्र हैं। यह दृष्टिकोण मानव और प्रकृति के बीच भावनात्मक एवं नैतिक संबंध को दिखाते हैं।[11] भारतीय दार्शनिक परंपरा में पर्यावरणीय चेतना का एक महत्वपूर्ण आयाम "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा है, जिसका अर्थ है कि संपूर्ण पृथ्वी एक परिवार के समान है। इसके अनुसार मानव, पशु-पक्षी, वनस्पति और समस्त जीवधारियों के बीच परस्पर निर्भरता का संबंध है। यह दृष्टिकोण प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग और जैव विविधता के संरक्षण की प्रेरणा हमें देते हैं।[12]

इसी प्रकार प्राचीन भारतीय समाज में जल, वन और भूमि के संरक्षण से जुड़ी अनेक पारंपरिक व्यवस्थाएँ विकसित हुई थीं। ग्रामीण समुदायों में तालाब, कुएँ और जलस्रोतों के संरक्षण की परंपरा थी, जबकि वनों को पवित्र मानकर उनके अंधाधुंध दोहन से बचाने के लिए "देव वन" या "पवित्र उपवन" जैसी परंपराएँ विद्यमान थीं, जो जैव विविधता के संरक्षण का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इन व्यवस्थाओं के माध्यम से स्थानीय समुदाय प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में सक्रिय भूमिका निभाते प्रतीत होते हैं।[13] भारतीय ज्ञान प्रणाली में प्रकृति के प्रति यह संवेदनशील दृष्टिकोण केवल धार्मिक या सांस्कृतिक विश्वास तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक व्यावहारिक जीवन-दर्शन का हिस्सा था। आयुर्वेद, कृषि परंपराएँ तथा वास्तुशास्त्र जैसे क्षेत्रों में भी पर्यावरणीय संतुलन को अत्यंत महत्व दिया गया है। उदाहरण के लिए, पारंपरिक भारतीय कृषि प्रणाली में जैविक खेती, फसल चक्र तथा जल संरक्षण की विधियों को अपनाया जाता था, जिससे भूमि की उर्वरता और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखा जा सके।[14]

वर्तमान समय में जब जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकट वैश्विक चिंता का विषय बन चुके हैं, तब भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित ये सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। ये सिद्धांत न केवल पर्यावरण संरक्षण की नैतिक प्रेरणा प्रदान करते हैं, बल्कि सतत विकास के लिए एक समग्र और संतुलित दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि इन पारंपरिक ज्ञान तत्वों को आधुनिक नीतिगत ढाँचों और विकास रणनीतियों के साथ समन्वित किया जाए, जिससे पर्यावरणीय संकटों का अधिक प्रभावी समाधान खोजा जा सके।

International Journal for Research Trends in Social Science & Humanities
Volume 4, Issue 2
Mar-Apr 2026, PP 1-9

4. जलवायु परिवर्तन से निपटने में भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रासंगिकता

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन मानव सभ्यता के लिए एक गंभीर चुनौती के रूप में उभरकर सामने आया है। बढ़ता वैश्विक तापमान, अनियमित वर्षा, हिमनदों का पिघलना और जैव विविधता का ह्रास इस संकट की प्रमुख अभिव्यक्तियाँ हैं। इन परिस्थितियों में केवल आधुनिक तकनीकी उपायों पर निर्भर रहना सही प्रतीत नहीं होता है, बल्कि ऐसे वैकल्पिक दृष्टिकोणों की भी आवश्यकता है जो प्रकृति के साथ संतुलित संबंध स्थापित करें। भारतीय ज्ञान प्रणाली इसी परिपेक्ष्य में एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जिसमें मानव और प्रकृति के बीच सह-अस्तित्व तथा संतुलन की भावना को केंद्रीय स्थान दिया गया है।[15]

भारतीय परंपरा में सतत जीवन-शैली को विशेष महत्व दिया गया है। वेदों और उपनिषदों के चिंतन में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मनुष्य को प्रकृति के संसाधनों का उपयोग संयम एवं संतुलन के साथ करना चाहिए। ईशावास्य उपनिषद का प्रसिद्ध मंत्र–

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।"

इसका तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग सीमित एवं जिम्मेदारी पूर्वक होना चाहिए। यह विचार आज के समय में सतत विकास (**Sustainable Development)** की अवधारणा से गहरा साम्य रखती है।[16]

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्थानीय समुदायों की भूमिका को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। पारंपरिक समाजों में जल, वन और भूमि जैसे संसाधनों के संरक्षण के लिए सामुदायिक व्यवस्थाएँ विकसित की गई थीं। राजस्थान के जोहड़ और तालाब प्रणाली, उत्तराखंड के चिपको आंदोलन से प्रेरित वन संरक्षण प्रयास तथा पूर्वोत्तर भारत में सामुदायिक वन प्रबंधन जैसी पहलें यह दर्शाती हैं कि स्थानीय ज्ञान और सामुदायिक सहभागिता पर्यावरण संरक्षण के प्रभावी साधन हमारे लिए हो सकते हैं।[17]

इसके अतिरिक्त भारतीय परंपरा में पर्यावरणीय नैतिकता का भी विशेष स्थान है। विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं में वृक्षों, नदियों और पर्वतों को पवित्र माना गया है, जिससे उनके संरक्षण की भावना विकसित होती है। उदाहरण के लिए, पीपल, वट और तुलसी जैसे वृक्षों की पूजा की परंपरा केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह पर्यावरण संरक्षण की सांस्कृतिक रणनीति भी है। इस प्रकार की परंपराएँ समाज में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और जिम्मेदारी की भावना को सुदृढ़ करती हैं।[18] वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय विमर्श में भी यह स्वीकार किया जाने लगा है कि पारंपरिक ज्ञान तथा सांस्कृतिक मूल्यों की धरोहर जलवायु परिवर्तन के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ भी स्थानीय समुदायों के ज्ञान और अनुभव को सतत विकास की रणनीतियों में शामिल करने पर बल दे रही हैं। इस संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली एक महत्वपूर्ण वैचारिक एवं व्यावहारिक आधार प्रदान करती है, जो संसाधनों के

संतुलित उपयोग, पर्यावरणीय नैतिकता तथा सामुदायिक सहभागिता पर आधारित है।[19]

अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए केवल एक सांस्कृतिक विरासत नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक मार्गदर्शक भी है। यदि इसके सिद्धांतों को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान और नीतिगत उपायों के साथ समन्वित किया जाए, तो यह पर्यावरणीय संकट के समाधान के लिए एक अधिक प्रभावी एवं टिकाऊ दृष्टिकोण प्रदान कर सकता है।

5. भारत की राष्ट्रीय नीतियां और जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन की चुनौती को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक नीतिगत पहलें की हैं। भारत जो एक विकासशील देश होने के कारण आर्थिक विकास, ऊर्जा सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करने की जटिल चुनौती का सामना कर रहा है। इस संदर्भ में भारत की जलवायु नीति का मूल उद्देश्य सतत विकास को सुनिश्चित करते हुए कार्बन उत्सर्जन को नियंत्रित करते हुए पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखना है।[20] भारत सरकार ने वर्ष **2008** में राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना (**NAPCC)** की घोषणा की, जो देश की जलवायु नीति का प्रमुख आधारभूत स्तम्भ है। इस योजना के अंतर्गत आठ प्रमुख राष्ट्रीय मिशनों को शामिल किया गया है, जिनमें राष्ट्रीय सौर मिशन, ऊर्जा दक्षता मिशन, सतत कृषि मिशन, जल मिशन, हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र मिशन, हरित भारत मिशन, सतत आवास मिशन तथा जलवायु ज्ञान मिशन प्रमुख हैं। इन मिशनों का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करना तथा सतत विकास के मार्ग को सुदृढ़ बनाना है।[21]

राष्ट्रीय सौर मिशन भारत की ऊर्जा नीति का एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसका प्रमुख लक्ष्य अक्षय ऊर्जा स्रोतों के उपयोग को बढ़ाना और जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता को कम करना है। पिछले कुछ वर्षों में भारत ने सौर ऊर्जा उत्पादन में उल्लेखनीय प्रगति की है तथा वैश्विक स्तर पर अक्षय ऊर्जा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान भी प्राप्त किया है। इस प्रकार ऊर्जा दक्षता से संबंधित नीतियां औद्योगिक उत्पादन और ऊर्जा खपत में संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती दिख रही हैं।[22] इसके अतिरिक्त भारत ने अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी जलवायु परिवर्तन से निपटने में सक्रिय भूमिका निभाई है। पेरिस समझौता (**2015)** के अंतर्गत भारत ने अपने राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (**NDCs)** के माध्यम से कार्बन उत्सर्जन की तीव्रता को कम करने तथा अक्षय ऊर्जा क्षमता को बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया है। भारत ने यह भी स्पष्ट किया है कि जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए विकसित और विकासशील देशों के बीच "सामान्य किंतु विभेदित उत्तरदायित्व" (**CBDR)** का सिद्धांत अपनाया जाना चाहिए।[23]

हाल के वर्षों में भारत सरकार द्वारा प्रारंभ किया गया मिशन **"LiFE" (Lifestyle for Environment)** पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में एक नवीन पहल

के रूप में उभरकर सामने आया है। इस पहल का उद्देश्य नागरिकों को पर्यावरण-अनुकूल जीवन शैली अपनाने के लिए प्रेरित करना है, जिससे संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग को बढ़ावा मिल सके। यह पहल भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में निहित संतुलित जीवन दृष्टि से प्रेरित है, जो प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित करने पर बल देती है। इसके साथ-साथ जैव विविधता संरक्षण, जल प्रबंधन, हरित ऊर्जा और सतत कृषि से संबंधित अनेक कार्यक्रम भी लागू किए गए हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय जैव विविधता अधिनियम (**2002**), फेम योजना (**2015**), पंचामृत (**2021**) तथा विभिन्न पर्यावरणीय संरक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने का प्रयास किया गया है।[24]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत की राष्ट्रीय जलवायु नीति बहुआयामी दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसमें वैज्ञानिक अनुसंधान, नीतिगत हस्तक्षेप और सामाजिक सहभागिता को समान रूप से महत्व दिया गया है। हालांकि इन नीतियों की सफलता काफी हद तक उनके प्रभावी क्रियान्वयन तथा समाज की सक्रिय भागीदारी पर निर्भर करती है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि आधुनिक नीतिगत प्रयासों को भारतीय ज्ञान प्रणाली के मूल्यों और सिद्धांतों के साथ समन्वित किया जाए, जिससे जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एक अधिक समग्र और टिकाऊ रणनीति विकसित की जा सके।

6. भारतीय ज्ञान प्रणाली और राष्ट्रीय नीति का समन्वयात्मक परिप्रेक्ष्य

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन की चुनौती केवल वैज्ञानिक या तकनीकी गत समस्या नहीं रह गई है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नीतिगत आयामों से भी गहराई से जुड़ी हुई है। इसलिए इसके समाधान हेतु बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली और आधुनिक राष्ट्रीय नीतियों के बीच समन्वय स्थापित करना इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल हो सकती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित प्रकृति-सम्मत जीवन दृष्टि एवं आधुनिक नीति-निर्माण की वैज्ञानिक पद्धति दोनों परस्पर मिलकर जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एक संतुलित तथा टिकाऊ रणनीति प्रदान कर सकते हैं।[25] भारतीय ज्ञान प्रणाली का मूल आधार प्रकृति एवं मानव के बीच संतुलित संबंध की अवधारणा है। प्राचीन भारतीय चिंतन में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मानव समाज का विकास तभी संभव है जब प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संतुलित तथा विवेकपूर्ण ढंग से किया जाए। यह दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरणीय नीतियों के उस सिद्धांत से मेल खाता है, जिसमें सतत विकास को विकास की आधारभूत शर्त मानी गई है।[26]

नीति-निर्माण के संदर्भ में यह आवश्यक है कि पारंपरिक ज्ञान तथा स्थानीय अनुभवों को भी महत्व दिया जाए। प्राचीन समय में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जल संरक्षण, वन प्रबंधन और कृषि से जुड़ी अनेक पारंपरिक प्रणालियाँ विकसित हुई थीं, जो स्थानीय पारिस्थितिक परिस्थितियों के अनुरूप थीं। उदाहरण के लिए, राजस्थान की पारंपरिक जल संचयन प्रणाली, पूर्वोत्तर भारत की सामुदायिक कृषि पद्धतियाँ तथा दक्षिण भारत के पारंपरिक जलाशय

प्रबंधन मॉडल यह दर्शाते हैं कि स्थानीय ज्ञान पर्यावरणीय संसाधनों के संरक्षण में अत्यंत प्रभावी भूमिका निभा सकते हैं।[27]

आधुनिक नीति-निर्माण में यदि इन पारंपरिक प्रणालियों को अपना लिया जाए, तो पर्यावरण संरक्षण की नीतियां अधिक प्रभावी एवं जन उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। इसके साथ ही स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी भी सुनिश्चित की जा सकती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में समुदाय-आधारित संसाधन प्रबंधन की परंपरा रही है, जो आज के समय में 'सहभागी शासन' **(Participatory Governance)** की अवधारणा से मेल खाती है।[28] इसके अतिरिक्त भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में पर्यावरणीय नैतिकता का भी विशेष स्थान है। प्रकृति के प्रति सम्मान, संयमित उपभोग तथा संतुलित जीवन-शैली जैसे मूल्य पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं। यदि इन मूल्यों को शिक्षा, जन-जागरूकता और नीतिगत कार्यक्रमों के माध्यम से प्रोत्साहित किया जाए, तो समाज में पर्यावरणीय जिम्मेदारी की भावना और मजबूत होगी।[29]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली और आधुनिक राष्ट्रीय नीतियों के बीच समन्वय स्थापित करना जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एक प्रभावी रणनीति हो सकती है। यह समन्वय न केवल पर्यावरण संरक्षण को सुदृढ़ करेगा, बल्कि सतत और संतुलित विकास की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा। इसलिए आवश्यक है कि नीति-निर्माण की प्रक्रिया में पारंपरिक ज्ञान, सांस्कृतिक मूल्यों और स्थानीय अनुभवों को समुचित स्थान दिया जाए, जिससे पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान अधिक व्यापक और स्थायी रूप से किया जा सके।

7. **प्रमुख चुनौतियाँ**

भारतीय ज्ञान प्रणाली और राष्ट्रीय जलवायु नीतियों के समन्वय की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है, किन्तु इसके प्रभावी क्रियान्वयन में अनेक प्रकार की चुनौतियाँ सामने आती हैं। इन चुनौतियों को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

पारंपरिक ज्ञान की उपेक्षा: आधुनिक विकास मॉडल में प्रायः वैज्ञानिक एवं तकनीकी दृष्टिकोण को ही प्रमुखता दी जाती है, जिसके कारण पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों की उपेक्षा हो जाती है। परिणामस्वरूप स्थानीय समुदायों के अनुभव तथा पारंपरिक पर्यावरणीय प्रथाएं नीति-निर्माण की प्रक्रिया में पर्याप्त स्थान नहीं प्राप्त कर पातीं।[30]

वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी जीवन शैली: भूमण्डलीकरण के प्रभाव से उपभोक्तावाद तथा अत्यधिक संसाधन-उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ी है। यह प्रवृत्ति भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित संतुलित और संयमित जीवन-शैली के सिद्धांतों के विपरीत है। इससे प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता है तथा पर्यावरणीय संकट और अधिक व्यापक हो जाता है।

नीति और क्रियान्वयन के बीच अंतर: भारत में जलवायु परिवर्तन से संबंधित अनेक नीतियां और योजनाएं बनाई गई हैं, किंतु उनके प्रभावी क्रियान्वयन में

कई बाधाएं देखने को मिलती हैं। प्रशासनिक समन्वय की कमी, संसाधनों का अभाव तथा संस्थागत कमजोरियां अक्सर नीतियों के अपेक्षित परिणामों को सीमित कर देती हैं।

पर्यावरणीय जागरूकता की कमी: जलवायु परिवर्तन के प्रति समाज के विभिन्न वर्गों में अभी भी पर्याप्त जागरूकता नहीं है। कई बार पर्यावरण संरक्षण को केवल सरकार की जिम्मेदारी के रूप में देखा जाता है, जबकि वास्तव में यह एक सामूहिक सामाजिक दायित्व है।[31]

पारंपरिक और आधुनिक ज्ञान के बीच समन्वय की कठिनाई: भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बीच समन्वय स्थापित करना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। दोनों की पद्धतियाँ और दृष्टिकोण अलग-अलग होने के कारण नीति-निर्माण में इनका प्रभावी एकीकरण सरल नहीं हो पाता है।

आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन: भारत जैसे विकासशील देश के लिए आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाए रखना एक बड़ी चुनौती है। विकास परियोजनाओं के विस्तार से कई बार प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता है, जिससे पर्यावरणीय संतुलन प्रभावित होता है।

स्थानीय समुदायों की सीमित भागीदारी: यद्यपि पर्यावरण संरक्षण में स्थानीय समुदायों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, फिर भी कई नीतिगत कार्यक्रमों में उनकी सहभागिता सीमित रहती है। इससे नीतियों के क्रियान्वयन में अपेक्षित प्रभावशीलता नहीं आ पाती है।[32]

8. **नीतिगत सुझाव**

जलवायु परिवर्तन की चुनौती से प्रभावी रूप से निपटने के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली और आधुनिक राष्ट्रीय नीतियों के बीच समन्वित दृष्टिकोण विकसित किया जाए। इस संदर्भ में निम्नलिखित नीतिगत सुझाव महत्वपूर्ण हो सकते हैं:

नीति-निर्माण में भारतीय ज्ञान प्रणाली का समावेश: पर्यावरण और जलवायु से संबंधित नीतियों के निर्माण में भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित प्रकृति-सम्मत सिद्धांतों को शामिल किया जाना चाहिए।

पारंपरिक ज्ञान का प्रलेखन और संरक्षण: देश के विभिन्न क्षेत्रों में मौजूद पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान एवं स्थानीय प्रथाओं का व्यवस्थित प्रलेखन (**Documentation)** किया जाना चाहिए

शिक्षा प्रणाली में पर्यावरणीय परंपराओं का समावेश: विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान प्रणाली तथा पारंपरिक पर्यावरणीय दृष्टिकोण को शामिल किया जाना चाहिए।[33]

सामुदायिक सहभागिता को प्रोत्साहन: पर्यावरण संरक्षण और जलवायु नीतियों के क्रियान्वयन में स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

सतत जीवन–शैली को बढ़ावा: भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में निहित संयमित उपभोग एवं संतुलित जीवन–शैली को प्रोत्साहित करने के लिए जन–जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए।[34]
पारंपरिक जल और कृषि प्रणालियों का पुनर्जीवन: जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों और जैविक खेती को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।
अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा: भारतीय ज्ञान प्रणाली और आधुनिक विज्ञान के बीच संवाद स्थापित करने के लिए शोध को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
हरित प्रौद्योगिकी का विस्तार: स्वच्छ ऊर्जा, ऊर्जा दक्षता और पर्यावरण–अनुकूल तकनीकों के उपयोग को बढ़ावा देना आवश्यक है।
नीति और क्रियान्वयन के बीच समन्वय: सरकारी नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए विभिन्न संस्थाओं तथा प्रशासनिक स्तरों के बीच बेहतर समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।
पर्यावरणीय नैतिकता का सामाजिक प्रसार: समाज में प्रकृति के प्रति सम्मान और संरक्षण की भावना विकसित करने के लिए सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं की भूमिका को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।[35]

9. निष्कर्ष

समग्र विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जलवायु परिवर्तन की समस्या केवल पर्यावरणीय संकट नहीं, बल्कि मानव सभ्यता के विकास मॉडल से जुड़ी एक व्यापक चुनौती है। भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में तीव्र औद्योगिकीकरण, उपभोक्तावादी जीवन शैली और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने पर्यावरणीय असंतुलन को और गहरा किया है। ऐसे परिदृश्य में यह आवश्यक हो जाता है कि विकास की अवधारणा को पुनः परिभाषित किया जाए और उसे प्रकृति के साथ संतुलित संबंध के आधार पर पुनर्गठित किया जाए। भारतीय ज्ञान प्रणाली इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करती है। प्राचीन भारतीय चिंतन में प्रकृति और मानव के बीच सह–अस्तित्व, संतुलित उपभोग और पर्यावरणीय नैतिकता पर विशेष बल दिया गया है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "पञ्चमहाभूत" जैसी अवधारणाएँ यह संकेत करती हैं कि प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध ही स्थायी विकास का आधार हो सकता है। दूसरी ओर, भारत की राष्ट्रीय जलवायु नीतियां भी सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास कर रही हैं।

अतः यह आवश्यक है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली के मूल्यों और आधुनिक नीतिगत उपायों के बीच समन्वय स्थापित किया जाए। ऐसा समन्वय न केवल पर्यावरण संरक्षण को सुदृढ़ करेगा, बल्कि विकास की प्रक्रिया को अधिक संतुलित, न्यायसंगत और टिकाऊ बनाने में भी सहायक सिद्ध होगा। यह दृष्टिकोण भारत को न केवल जलवायु परिवर्तन की चुनौती से प्रभावी रूप से निपटने में सक्षम बनाएगा, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी एक वैकल्पिक एवं संतुलित विकास करने की दिशा में मार्ग प्रशस्त करेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. माधव गाडगिल एवं रामचंद्र गुहा, **इकोलॉजी एंड इक्विटी: समकालीन भारत में प्रकृति का उपयोग और दुरुपयोग**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995, पृ. 25-30।
2. रामचंद्र गुहा, **पर्यावरणवाद: एक वैश्विक इतिहास**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014, पृ. 85-90।
3. कपिल कपूर, **भारतीय ज्ञान प्रणाली: प्रकृति और पर्यावरण का दृष्टिकोण**, नई दिल्ली, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, 2019, पृ. 40-48।
4. भारत सरकार, **राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना (NAPCC)**, नई दिल्ली, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, 2008, पृ. 5-11।
5. अनिल अग्रवाल एवं सुनीता नारायण, **ग्लोबल वार्मिंग इन एन अनइक्वल वर्ल्ड**, नई दिल्ली, सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट, 1991, पृ. 15-20।
6. रामचंद्र गुहा, **पर्यावरणवाद: एक वैश्विक इतिहास**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014, पृ. 94-101।
7. माधव गाडगिल एवं रामचंद्र गुहा, **इकोलॉजी एंड इक्विटी**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995, पृ. 45-52।
8. पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, **भारत और पेरिस समझौता**, नई दिल्ली, भारत सरकार प्रकाशन, 2016, पृ. 12-17।
9. जयराम रमेश, **ग्रीन सिग्नल्स: इकोलॉजी, ग्रोथ एंड डेमोक्रेसी इन इंडिया**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015, पृ. 60-65।
10. राधाकमल मुखर्जी, **मैन एंड हिज हैबिटेट: सामाजिक पारिस्थितिकी का अध्ययन**, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ. 55-60।
11. **अथर्ववेद**, 12.1.12; अनुवाद: श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, **अथर्ववेद भाष्य**, नई दिल्ली, स्वाध्याय मंडल, 1998, पृ. 210।
12. कपिल कपूर, **भारतीय ज्ञान प्रणाली: सिद्धांत और परिप्रेक्ष्य**, नई दिल्ली, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, 2019, पृ. 65-72।
13. माधव गाडगिल एवं रामचंद्र गुहा, **इकोलॉजी एंड इक्विटी**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995, पृ. 120-125।
14. वंदना शिवा, **स्टेइंग अलाइव: विमेन, इकोलॉजी एंड डेवलपमेंट**, नई दिल्ली, काली फॉर वुमेन, 1988, पृ. 88-95।
15. रामचंद्र गुहा, **पर्यावरणवाद: एक वैश्विक इतिहास**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014, पृ. 120-128।
16. **ईशावास्य उपनिषद**, मंत्र 1, अनुवाद: स्वामी शिवानंद, **उपनिषदों का संदेश**, नई दिल्ली, रामकृष्ण मिशन प्रकाशन, 2005, पृ. 15-18।
17. अनुपम मिश्र, **आज भी खरे हैं तालाब**, नई दिल्ली, गांधी शांति प्रतिष्ठान, 2001, पृ. 40-54।
18. वंदना शिवा, **पृथ्वी लोकतंत्र: न्याय, स्थिरता और शांति की दिशा में**, नई दिल्ली, जेड बुक्स, 2005, पृ. 72-80।

19. माधव गाडगिल एवं रामचंद्र गुहा, **इकोलॉजी एंड इक्विटी**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995, पृ. 140-148।
20. जयराम रमेश, **ग्रीन सिग्नल्स: इकोलॉजी, ग्रोथ एंड डेमोक्रेसी इन इंडिया**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015, पृ. 90-98।
21. भारत सरकार, **राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना**, नई दिल्ली, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, 2008, पृ. 10-18।
22. नवरोज के. दुबाश (संपादक), **हैंडबुक ऑफ क्लाइमेट चेंज एंड इंडिया: डेवलपमेंट, पॉलिटिक्स एंड गवर्नेंस**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012, पृ. 120-130।
23. पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, **भारत और पेरिस समझौता**, नई दिल्ली, भारत सरकार प्रकाशन, 2016, पृ. 20-26।
24. भारत सरकार, **मिशन LiFE: लाइफस्टाइल फॉर एनवायरनमेंट**, नई दिल्ली, नीति आयोग एवं पर्यावरण मंत्रालय, 2022, पृ. 5-9।
25. गोविंद चंद्र पांडे, **भारतीय संस्कृति और पर्यावरण चेतना**, वाराणसी, चौखम्भा विद्याभवन, 2011, पृ. 72-78।
26. आर. के. सिन्हा, **पर्यावरण अध्ययन: सिद्धांत और व्यवहार**, नई दिल्ली, पियर्सन एजुकेशन इंडिया, 2014, पृ. 116-122।
27. धर्मपाल, **भारतीय परंपरा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी**, नई दिल्ली, अदिति प्रकाशन, 2000, पृ. 98-105।
28. तुषार शाह, **भारत में जल प्रबंधन की परंपराएँ और चुनौतियाँ**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009, पृ. 140-148।
29. अरुण कुमार सिंह, "पर्यावरण संरक्षण और भारतीय सांस्कृतिक परंपरा," **भारतीय पर्यावरण अध्ययन जर्नल**, खंड 12, अंक 2, 2018, पृ. 55-62।
30. पी. एस. रामकृष्णन, **इकोलॉजी एंड सस्टेनेबल डेवलपमेंट इन इंडिया**, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2001, पृ. 65-70।
31. एम. के. प्रसाद, **पर्यावरण और समाज**, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशन, 2010, पृ. 95-97।
32. बिनोद बिहारी वर्मा, "सामुदायिक सहभागिता और पर्यावरणीय शासन," **भारतीय लोक प्रशासन जर्नल**, खंड 63, अंक 3, 2017, पृ. 210-211।
33. यूजीसी, **भारतीय ज्ञान प्रणाली: उच्च शिक्षा में एक रूपरेखा**, नई दिल्ली: विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रकाशन, 2021, पृ. 22-28।
34. महात्मा गांधी, **हिंद स्वराज**, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन, 2009 (पुनर्मुद्रण), पृ. 52-56।
35. पी. एन. ओझा, "भारतीय संस्कृति और पर्यावरणीय नैतिकता," **भारतीय समाज विज्ञान जर्नल**, खंड 8, अंक 1, 2016, पृ. 40-46।